



स्वाधीन भारत की सामाजिक व्यवस्था: दलित वर्ग की स्थिति के विशेष सन्दर्भ में

*विमला मिंज

स्वतंत्रता प्राप्ति के करीब डेढ़-दो दशक उस लम्बे युद्ध की विश्रान्ता और आंदोलन के दौरान दलित मुक्ति की कतिपय घोषणाओं, वायदों और संकल्पों को चरितार्थ होने की प्रतीक्षा कर रहे 1960 के दशक में "रिपब्लिकन पार्टी" ने भूमिहीन दलितों की लड़ाई में अग्रगण्य भूमिका निभाई। महाराष्ट्र के बाद उत्तरप्रदेश में यह भूमि आंदोलन तेज हुआ। इसी उभार में "बुद्धप्रिय मौर्य" जैसे प्रखर राजनैतिक वक्ता पैदा हुए जो कालान्तर में विवशतः अम्बेडकर विरोधी राजनीति के हिस्सा बन गये। देश के अधिसंख्य दलित नेतृत्व ने भूमि आंदोलन को राष्ट्रीय प्रश्न के रूप में नहीं देखा। अंग्रेजी शासन के विरुद्ध राष्ट्रीय आंदोलन की लड़ाई में कतिपय मुस्लिम और हरिजन नेता कांग्रेस नेतृत्व के साथ तालमेल नहीं बैठा पा रहे थे। गैर कांग्रेसी हरिजन नेताओं ने अन्ततः राष्ट्र की मुख्य धारा के साथ जुड़ने का निश्चय किया। देश विभाजन के पश्चात् नये समाज के ढांचे की रूपरेखा बनाते समय यह ध्यान में रखा गया कि नया सामाजिक ढांचा ऐसा हो जिसमें सदियों से उपेक्षित हरिजनों के साथ न्याय और अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा हो सके। इस दृष्टि से समन्वित लोकतांत्रिक सामाजिक संरचना की पहचान विशेष रूप से भारत जैसे बहुल समाज के संदर्भ में बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि कहाँ तक सिख, मुस्लिम और हरिजन समाजों को समाज की मुख्य धारा के साथ जोड़ा जा सका है। पूर्वी उत्तरप्रदेश के गांवों के समाज में विभिन्न वर्गों के बीच सामंजस्य और सौहार्द तो दिखाई देता था किन्तु आजादी के तीन दशकों में विभिन्न जातियों, वर्गों और समुदायों के बीच जो निर्वाध भागेदारी और स्वच्छन्द आदान-प्रदान चाहिए था जिससे दूध और पानी के मिश्रण की भांति आपसी भाईचारे पर आधारित एक समेकित समाज का विकास हो सके इसके बहुत उत्साह जनक चिन्ह दिखाई नहीं दिये। अन्य वर्गों की तुलना में दलितों की अपनी कुछ विशिष्ट समस्याएँ हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश का नया संविधान बना। जात-पाँत और ऊँच नीच का परम्परात्मक भेदभाव समाप्त कर दिया गया। शिक्षा, आत्मविश्वास, रोजगार सहित सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में स्वतंत्रता और समानता के सिद्धांतों की स्थापना की गई। किन्तु नया समाज अभी तक नहीं बन पाया। समाज में जात पात का अस्तित्व बरकरार है। दलितों की निर्योग्यतायें कम जरूर हुई हैं किन्तु उनकी समस्याएँ बढ़ गई

हैं। स्वतंत्रोपरांत समाज में किन मूल्यों की स्थापना करनी है इसका निर्धारण बहुत कुछ राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान ही हो चुका था। नये संविधान में जात-पाँत, छुआछूत का प्रतिख्यान कर दिया गया। शिक्षा, आत्म विकास तथा व्यवसाय के चुनाव आदि विषयों में सभी नागरिकों को समानता प्रदान कर दी गई। सामाजिक विधानों के माध्यम से विभिन्न जातियों के बीच विवाह को मान्य कर दिया गया। दलितों को उनकी परम्परात्मक सामाजिक, आर्थिक निर्योग्यताओं को देखते हुए लोकसभा तथा विधानसभाओं में स्थान सुरक्षित किये गये। शासकीय सेवाओं में आरक्षण प्रदान किया गया। उनकी शिक्षा व आर्थिक विकास हेतु राज्यों को आवश्यक कदम उठाने के निर्देश दिये गये।

संवैधानिक प्रावधानों और शैक्षणिक एवं आर्थिक विकास संबंधी विविध कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के बावजूद दलितों की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हो सका। समाज से न तो जात-पाँत का भेद हटा और न ही दलितों की पहचान मिट सकी इसके विपरीत समाज में विभिन्न जातियों के बीच आपसी सामंजस्य घट गया। जातिवाद का विकास हुआ जिससे सम्पूर्ण सामाजिक जीवन दूषित हो गया है। आज विभिन्न जातियों न केवल खानपान, शादी विवाह और मेल-मिलाप से जुड़ा है बल्कि उनकी अपनी संस्थाएँ हैं, स्कूल हैं, राजनैतिक दल हैं और नेता हैं। ऐसे माहौल में जहाँ गैर दलित जातियों के लोग ब्राह्मण बनाम क्षत्रिय अथवा फारवर्ड बनाम बेकवर्ड खेमों में बंट रहे हैं। दलितों का शेष समाज के साथ एकीकरण का सवाल ही पैदा नहीं होता। परिणामस्वरूप स्वातंत्रोत्तर भारत में आशा के विपरीत शेष समाज में दलितों का संविलियन सहज नहीं हो सका है। उनका उत्पीड़न बढ़ा है। उन पर अत्याचारों में वृद्धि हुई है। वर्तमान में सामाजिक संस्तरण की सबसे नीचे की सीढ़ी पर दलित हैं। स्वतंत्रता पूर्व की दुर्दशा को देश पर परकीय शासकों के शासन का परिणाम मान राष्ट्रीय परतंत्रता में समग्रता से काटकर दलित मुक्ति की परिकल्पना को असंभव मानते हैं।

आजादी के दो दशक बाद रघुवीर सहाय ने "हरिजन दशा" शीर्षक से "दिनमान" में लिखा - "देश के हर 100 आदमी के पीछे जिस वर्ग की जनसंख्या (1961 की जनसंख्या के अनुसार) 20 है, वह आजादी के बीस साल बाद क्या सोचता है? उसके सवर्ण हितैषियों ने शताब्दियों से जो वचन दिया था उस पर क्या किसी रूप में अमल किया जा रहा है? सवर्ण

डाक्टर परेशान हैं, उनकी शल्य-चिकित्सा का कुल मिलाकर यही हो रहा है कि ऑपरेशन तो सफल रहा, लेकिन मरीज का दम निकल गया। आंध्र में हरिजन बालक 'कोट्टया' को जिन्दा जलाया जाना, बिहार के 'मधोपुर' गांव के हरिजन 'सिद्ध पासवान' की सवर्णों द्वारा निर्मम हत्या, महबूब नगर में हरिजन औरतों की नग्न परेड का आयोजन, ये सब बीमारी के लक्षण हैं।¹

स्वतंत्रता मिलने के बाद दलितों की सामाजिक दशा में स्वतंत्रता मूलक परिवर्तन होगा ऐसा आश्वासन राष्ट्रीय आंदोलन के तमाम नेता दे रहे थे। जिनके अगुआ थे मोहनदास कर्मचंद गांधी, लेकिन जब स्वातंत्रोत्तर दो दशक बाद भी हरिजनों के प्रति सवर्ण हिन्दुओं का रवैया नहीं। गैर दलितों के हाथों दलितों की गुलामी की बेड़ियाँ नहीं हटेंगी। ये डॉ. अम्बेडकर की शंका सच साबित हुई। आजादी के युद्ध का नेता भले ही हर दलित नहीं रहा, परन्तु शहादतें उसने किसी से कम नहीं दी। आज भी वह देश के विकास में कृषि, भवन, सेना और उद्योगों में अपना खून-पसीना दे रहा है, वह एक क्षण भी इन्कार कर दे तो देश की सूरत गुलाम देश से भी बदतर हो जायेगी क्या इसका एहसास किसी को है।

"दो बच्चों 'बिहारी' (6 वर्ष) और 'शकुन्तला' (3 वर्ष) को अभियुक्त ठाकुर लालसिंह जिसकी माँ कौशल्या देवी ग्राम सभापति हैं ने बच्चों को उनकी दादी की गोद से छीना और उन्हें कुएँ में फेंककर मार डाला।² सातवें दशक में स्थिति यह थी कि - 'रतलाम (म.प्र.) में हरिजनों को अपनी मूँछों पर ताव देकर ऊपर रखने दिया जाता, हरिजन स्त्रियाँ कानों में बूंदे नहीं पहन सकती। 'नेमवेली' में हरिजनों का सार्किल पर सवार होना एक सामाजिक अपराध है।³ 1968 के दशक की दलित परिस्थिति का एक नमूना एक चमार परिवार के आत्म निवेदन में सहज मिलता है - 'मेरे परिवार में मेरी पत्नी और चार बच्चे हैं। हम गांव में मुर्दा मवेशियों को उठाते हैं पिछले महीने गांव में सिर्फ दो मवेशी मरे। उनके चमड़े से 4 रूपया मिला, दो जोड़ी गांव के जूते बनाये थे उससे 3 रूपये की आमदनी हुई। फुटकर मजदूरी से 18 रूपया मिला। इस तरह 25 रूपये में बच्चों समेत छः पेट पालने पड़ते हैं। इतने से भूख की आग नहीं बुझती। इसलिये पूरा परिवार मुर्दा मवेशी खाता है।⁴

"जाति विहीन और वर्ग विहीन समाज की रचना के बिना आज भी भारत का स्वराज्य अधूरा है।⁵ "अस्पृश्यता सवर्ण मानस में जड़वत है। 'दिनमान' ने इस कथन के पक्ष में विभिन्न राज्यों के सर्वेक्षण प्रकाशित किये। जैसे - मैसूर राज्य की एक संस्कृत पाठशाला में हिन्दू धर्म ग्रंथों के अध्ययन का अधिकार केवल ब्राह्मण छात्रों को ही है। मध्यप्रदेश के एक सर्वेक्षण में पाया कि 250 ग्राम पंचायतों में से 150 में हरिजनों को सवर्णों के साथ बैठने का अधिकार प्राप्त नहीं है। 'गुजरात' के 9 जिलों के 105 गांवों में से 39 में हरिजनों को सवर्णों के कुओं से पानी भरने पर पाबंदी है। राजस्थान अस्पृश्यता निवारण अभियान से संबद्ध प्रचारक सवर्णों की परिधि में ही चक्कर लगाते रहते हैं,

अस्पृश्यता से संबद्ध प्रकाश में आने वाले मामले दर्ज ही नहीं करती। हिमाचल प्रदेश के एक 'बौद्ध मंदिर' में हरिजनों को अंदर जाकर प्रार्थना चक्र घुमाने का अधिकार नहीं है। उत्तरप्रदेश के मेरठ जिले में दलित वर्ग के एक व्यक्ति को सवर्णों ने बुरी तरह पीटा। 'मथुरा' जिले के एक गांव में बड़ी जातियों ने हरिजनों की सम्पत्ति लूटी औरतों के साथ दुर्व्यवहार किया, इसका कारण विगत चुनाव में दलितों ने सवर्ण उम्मीदवार का समर्थन नहीं किया था। इलाहबाद जिले में सवर्णों ने हरिजनों को मृत पशु उठाने को विवश किया। अलीगढ़ में एक जिम्मेदार अधिकारी द्वारा मृतक दाह हेतु सुरक्षित कर दी गई जमीन सवर्ण किसानों ने जबरदस्ती जोत ली।⁶

यह है भारतीय स्वतंत्रता के दो दशक बाद की दलित विषयक सामाजिक परिस्थितियों की घटनाएँ, ये कतिपय नमूने पूरी स्थिति को समझने में सहायक होंगे। स्वतंत्रता के बाद की इस दुर्दशा में दलित वर्ग अंदर से एक असुरक्षा परायण और यथार्थ से जूझने में विफल होने के कारण पलायनवादी अतीतोन्मुखी होकर कहने लगा कि "डॉ. अम्बेडकर के अलावा किसी और को भारतीय दलितों के मुक्तिदाता के रूप में स्वीकार करना एक भारी भूल होगी। दलितों की मुक्ति के नाम पर गुमराह करने वालों की असलियत दलित जनता समझने लगी है।⁷ दलित विषयक सामाजिक घटनाएँ उनकी सामाजिक स्थिति का एहसास कराती हैं। दलितों के लिये सामाजिक यथार्थ आज भी कटुतर है। इसके नमूने 1980 के शुरु की घटनाओं से लिये जा सकते हैं। प्रतिनिधि पत्रिका के रूप में 9-15 मार्च 1980 के 'दिनमान' का अंक 'हरिजन दहन' इस अंक की कवर स्टोरी है। और सम्पादकीय 'एक और दक्षिण अफ्रीका' शीर्षक से छपा। दलित अत्याचारों से मुक्ति का रास्ता कुछ लोगों ने अलग प्रदेश के रूप में सुझाया। "देश का आदि निवासी अपने ही देश में निर्वासित - सा प्राण रक्षा के लिये जगह खोजता फिरे ये गुलाम भारत पर नहीं तो स्वतंत्रता पर प्रश्नचिन्ह लगाने वाला विचार है। कहीं और क्यों जबकि यह सारा देश और उसका हर कोना हर एक का है? बांटों या स्वयं सुरक्षित रहो इस सोच का एक ही अर्थ निकलता है कि देश शोषकों का है और बराबरी का हक मांगने वालों पर अत्याचार का अधिकार उनकी बपौती है।⁸ 1980 के शुरु में ही नारायणपुर, परसबीघा की घटनाओं के बाद संवेदनशील बुद्धिजीवियों की प्रतिक्रियाएँ, हिन्दी पत्र-पत्रकारितों में काफी मिलती हैं। "रंगा-बिल्ला" को फांसी पर लटका देने का ढोल पीटना कि सरकार बहादुर सक्रिया है क्या नारायणपुर की या परसबीघा की घटनाओं से जुड़े लोगों को भी फांसी पर लटका सकती है सरकार? सामूहिक बलात्कार, गुप्त अंगों में डंडा डालना, वे चाहे नक्सलपंथी हों या नारायणपुर के लोग, इस देश के राजनेताओं, बुद्धिजीवियों, इतिहासकारों में क्या इतनी हिम्मत है कि वे कह सकें कि जलियाँवाले गोलीकांड से भी बढ़कर गोलीकांड यहाँ हो चुके हैं। शेरपुर, नसीमपुर, मुजफ्फरपुर, बेलछी, विश्रामपुर, नारायणपुर, परसबीघा आदि की घटनाएँ ऐसी ही हैं जिनकी मिसाल दुनिया

में कहीं नहीं मिलती।⁹ परसबीघा की घटना 25 फरवरी 1980 की है।

सूर्यनारायण चौधरी के अनुसार हरिजनों (चमारों) के 27 घरों को जलाकर राख कर दिया। उस समय के तात्कालिक गृहमंत्री ज्ञानी जैलसिंह और बाबू जगजीवनराम वहाँ पहुंचने वालों में प्रमुख राजनेता थे। कुर्मी प्रधान गांवों से निकालकर कहीं और बसाने की व्यवस्था कराने का दलितों ने उनसे अनुरोध किया था। रिपोर्ट के साथ 'दिनमान' ने हत्या की गई दो दलित महिलाओं के चित्र पृष्ठ 24 पर छापे। जिसमें एक स्त्री का एक स्तन काट लिया गया जो चित्र में स्पष्ट दिख रहा था। 1982 में सादूपुर की खौफनाक घटना इतिहास में दर्ज है। राज्य सभा सदस्य लाडली मोहन निगम के अनुसार — "शाम पाँच बजे सादूपुर गांव में दस लाशें धू-धू कर जल रही थी। ये लाशें थीं, एक दिन पहले ठंड भरी शाम को जाटवों के मुहल्ले पर हुए डकैतों के सशस्त्र हमले में मारे गये लोगों की। जाटवों के 48 परिवारों में जिन 8 परिवारों के लोग मारे गये हैं वे सबसे गरीब परिवार थे। डाकुओं के गुस्से का निष्कर्ष सिर्फ इतना है कि सादूपुर के जाटव नौजवान देहली में पीड़ित जाटवों की इमदाद करने गये थे और उन्होंने ठाकुरों के खिलाफ नारे लगाये। सामाजिक तनाव की स्थिति इतनी विकट है कि ऊंची जातियों के लोग यह मानने को तैयार नहीं कि दलित बंदूक मिलने पर भी अपनी रक्षा अपने आप कर सकते हैं।"¹⁰ सन् 1990 से 1993 डॉ. बाबा साहब बी.आर.अम्बेडकर जन्मशती वर्ष रहे। इन्हीं के साथ सामाजिक न्याय वर्ष विशेषण भी इस अवधि के साथ जोड़ दिया गया, किन्तु इस काल में भी दलितों की उपेक्षित दशा का बराबर एहसास कराते रहने वाली दर्दनाक घटनाओं में कोई कमी नहीं आई। जैसे — "5 अप्रैल 1990 को फतेहपुर में ठाकुर भू-स्वामियों ने धनराज नाम दलित को जिन्दा जला दिया। कारण उसने अपनी 21 वर्षीय सगर्या पत्नी को उनकी हविश के हवाले करने से इंकार कर दिया था। दैनिक नवभारत टाइम्स ने अपने सम्पादकीय में बताया कि, आग से बुरी तरह से जले हुए धनराज का मरने से पहले बयान न थाने में लिया न नरिसिंगहोम में यह सब पुलिस चरित्र के अनुरूप ही था।"¹¹ इसी प्रकार कुछ प्रतिनिधि घटनाएँ — "रूद्रायन

(अलीगढ़) में दाताराम जाटव को उसी के जलते हुए सरसों के खलिहान में फेंक दिया। शिवपुरी के सलैया कांड में सवर्णों ने दलित स्त्रियों को नंगा करके नाचने को बाध्य किया। उन्नाव के एक चमार अपोली को जाट और ठाकुरों ने तेजाब छिड़ककर मार डाला।"¹² मथुरा के निकट 'मेहराना कांड' सामाजिक क्रूरता का ज्वलंत प्रमाण था। जिसमें जाट लड़की रोशनी के प्रेम प्रसंग में लड़की सहित दो दलित लड़कों को बाकायदा जाट पंचायत ने पेड़ पर लटकाकर फांसी दी। सामाजिक उपेक्षा की घटनाओं के ऐसे अनेक नमूने हैं। उनमें कुछ प्रमुख घटनाएँ हैं जिन्होंने समाज और राजनीति की सुप्तता को झकझोरा। जैसे — कोतवाल की हत्या पर राज्य सभा में हंगामा शीर्षक खबर में नभाटा ने कहा — "बरसात से बचने के लिये हनुमान मंदिर की सीढ़ियों पर खड़े होने के अपराध में महार जाति के पुलिस कोतवाल 'अंबादास सावणे' की पत्थर मार-मारकर हत्या कर दी गई।" केन्द्र ने दलित अत्याचार निवारण अधिनियम 1990 बनाया, लेकिन अत्याचारों में कोई कमी दिखाई नहीं देती। सन् 1990 से 1991 तक कम से कम 667 लोगों की हत्या की गई। 1027 दलित महिलाओं के साथ बलात्कार किये गये तथा अपहरणों की संख्या 177 रही। दलितों की सामाजिक दुर्दशा का क्रम कहीं विराम नहीं पा रहा। कुछ जघन्य अपराधों का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, "पटना-बिहार के जिला कोलागंज में 40-50 हथियारबंद लोगों ने 10 हरिजनों की हत्या कर दी। सरकार 'चुदूर' ग्राम में दलितों की हत्याओं की पुनरावृत्ति रोकने में विफल रही। वहाँ अनशन पर बैठे लोगों में से एक दलित युवक पुलिस की गोली से मारा गया।"¹³ दलितों के विरुद्ध जारी अत्याचार रोकने के उद्देश्य से राजस्थान के मुख्यमंत्री भैरोसिंह शेखावत की दलितों को दलितों की ओर से दिये गये ज्ञापन में कहा गया कि — "सरकार की उदासीनता के कारण राज्य में दलितों पर निरंतर अत्याचार बढ़े हैं। 1988 में 15207, 1989 में 15726, 1990 में दलित अत्याचारों के 16562 मामले सामने आये। 1981 से 1986 तक पांच साल की अवधि में 84 हजार से अधिक दलित आदिवासियों की हत्याएँ की गईं। मुजफ्फरपुर के 'गोरी गांव' में 36 हरिजनों के घरों में जमींदारों ने दिन दहाड़े आग लगा दी।"¹⁴

संदर्भ ग्रंथ

1. 'दिनमान' (हरिजन दशा) पृष्ठ 26 मई 1968 2. बुद्ध घोष वर्ष अंक — 10 मई 1968 3. बुद्ध घोष वर्ष अंक — 10 मई 1968 4. स्वराज्य अधूरा है, हिन्दी रिपब्लिकन भारत — मई 1968 5. 'दिनमान' मई 1968, पृष्ठ 28 6. अम्बेडकर और मुक्ति संघर्ष — हिन्दी पाक्षिक 'काला' भारत—अक्टूबर 1978 7. वीरोस क्यूयेव — हिन्दी अनुवादक नरेश बेदी — स्वतंत्र भारत : जातीय तथा भाषाई समस्या, पृष्ठ 18 8. सौमेन्द्र स्वाई (मत और सम्मत) 'दिनमान', पृष्ठ 3-9 मई 1980 9. सूर्यनारायण चौधरी अनंत अत्याचारों की अनंत कहानी — दिनमान पृष्ठ 24 मार्च 1980 10. कल्याण मंत्रालय — भारत सरकार वार्षिक रिपोर्ट हिन्दी 1991-1992 पृष्ठ 6 11. हिन्दी साप्ताहिक — चौथी दुनिया अप्रैल 1990 12. श्योराजसिंह बेचैन — सामाजिक न्याय वर्ष एक छलावा — बहुजन संघर्ष मई 1991 13. जनसत्ता, दिल्ली, दिसम्बर 1991 14. जनसत्ता, दिल्ली, दिसम्बर 1991